Chapter-7

==========

अध्याय : 7 :: उपसंहार ::

==========

:: अध्याय : 7 ::

:: उपसंहार ::

कथा-पुराण अर्थात् कथा कहने और सुनने की प्रवृत्ति अत्यंत प्राचीन है । जब भी आदिम मनुष्य ने बोलना सीखा होगा और जब भी पहली बार उसका मन उकताया होगा , उसने कथा का ही आश्रय लिया होगा । उसके बाद मनुष्य कुछ प्रबुद्ध होता गया , उसे ज्ञान की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस हुई । तब अपने उस ज्ञान को परावेष्टित करने के लिए भी उसने कथा की ही शरण ली होगी । फिर जब-जब इस संसार रूपी सागर में तूफान उठे , आंधियां आयीं , झंझावात आये , तब-तब आदमी ने अपने खौफ को मिटाने के लिए भी इसी कथा-रूप का आसरा मांगा होगा । ये सब "होगा-होगी" की बातें तो केवल कल्पना है ; परन्तु संसार के साहित्य में उपन्यास {नोवेल} की उपस्थिति कल्पना नहीं है , एक वास्तविकता है । योरोप में जब औद्योगिक क्रांति आयी , समाज में एक आमूलचूल परिवर्तन आया । समाज संश्लिष्टता एवं जटिलता की ओर अग्रसर हुआ , तब उसकी उस संश्लिष्टता और जटिलता को समझने-परखने के लिए एक नये काव्य-रूप, एक नये साहित्य-रूप की उपादेयता प्रतीत होने लगी और तब कहीं जाकर उपन्यास का यह नया रूपबन्ध सामने आया ।

अंग्रेज हमारे यहां आये । व्यापार करते-कराते उन्होंने हमारे देश के शासन को ही हथिया लिया । सामन्त-युग में क्षात्र-मूल्यों का बोलबाला था , अब जो व्यापार-युग आया , उसमें वणिग्धर्म का बोलबोला है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भले ही आशा व्यक्त की हो कि ××× कभी न कभी इस व्यापार-युग का , इस वणिग्धर्म का अन्त होगा और फिर से क्षात्र-धर्म उदित होगा । वह तो जब होगा तब होगा , फिलहाल तो यही है कि यह व्यापार-युग है और व्यापार-युग में सत्ता उसकी होती है, जिसके हाथ के मार्केट होता है , बाजार होता है और हम फिर देखते जा रहे हैं कि यह बाजार , यह मार्केट फिर पश्चिम की तरफ खिसक रहा है । हम आर्थिक -दृष्टया परतंत्र-परवश होते जा रहे हैं , और इस व्यापार-युग

पौवा उसका भारी होता है , जो आर्थिक -दृष्टया संपन्न होता है । गरज यह कि हम फिर से पराधीनता की ओर बढ़ रहे हैं । खैर जो भी हो , फिलहाल तो यही कहा जा रहा था कि व्यापार के बहाने अंग्रेजों ने हमारे देश पर राजनैतिक सत्ता हासिल कर ली थी । जब अंग्रेजी राज्य कायम हुआ तो शासन चलाने के लिए कुछ देसी लोगों की आवश्यकता महसूस हुई । कहा जाता है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है , तो इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु लोगों को प्रशासन के लिए तैयार करने के मिस जो शैक्षिक -पद्धति आयी , उसे हम मैकोलीय अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली कहते हैं । उसके तहत अंग्रेजी-शिक्षा का श्रीगणेश हुआ , कलकत्ता में फोर्ट विलयम कालेज की स्थापना हुई और उसके जरिये हम लोग अंग्रेजी-साहित्य के परिचय में आये । अंग्रेजी में यह {उपन्यास} साहित्य-रूप औद्योगिक-क्रांति के समय से था , यह पहले कहा जा चुका है , अतः हमारे साहित्य में भी यह काव्य-रूप , जब कुछ उस प्रकार की ही स्थितियां सामने आयीं तो प्रकट हुआ ।

" उस प्रकार " की स्थितियों से अभिप्राय यहां यह है कि औद्योगिक क्रांति का प्रवेश , पूंजीवाद का जन्म , नगरीकरण , ग्राम्य-विघटन , परिवार-विघटन , मूल्य-विघटन आदि ने हमारे यहां भी एक नये युग का निर्माण किया । इस युग को हिन्दी-साहित्य में "नव-जागरण-काल " के नाम से अभिहित किया गया । इस काल-खण्ड के भीतर बड़े तीव्र और क्षिप्र परिवर्तन आये । गद्य का आविर्भाव , पत्र-पत्रिकाओं का उदय , उनके माध्यम से वैचारिक आदान-प्रदान की संभावनाओं का बढ़ जाना , निबंध और लेखों के माध्यम से भी वैचारिक क्रांति की उत्प्रेरणा का तीव्रतर होना , आर्य-समाज , प्रार्थना समाज , ब्रह्मोसमाज जैसे सुधारवादी आंदोलनों का उठना ; भारतीय सभ्यता और संस्कृति की छानबीन ; जातिवाद पर विचार और पुनर्विचार ; वर्ण-व्यवस्था पर नये सिरे से विचार-विमर्श ; इतिहास-बोध ; रूढ़िवादिता और प्रगति-बाधक परंपराओं पर एक नया दृष्टिक्षेप ; नारी-जागरण ; राजनीतिक चेतना का फैलाव ; समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के विचारों पर अधिकाधिक तवज्जो ; अंग्रेज मिशनरी के धर्म-प्रचार के कार्य ; उनके प्रयत्नों से असवर्ण-समाज में कुछ हलचल जैसी अनेकानेक घटनाएं आकार लेती गई और

एक नयी फिजां , एक नया वातावरण , एक नये परिवेश ने जन्म लिया । तब इन सब घटनाओं से समाज में जो एकबारगी परिवर्तन आया , उस परि- से समाज के रूप में एक संरचनात्मक बदलाव आया , जिसके फलस्वरूप उसकी संश्लिष्टता और जटिलता में अभिवृद्धि हुई और तब उसके उचित संवाहक के रूप में उपन्यास आया ।

वस्तुतः उपन्यासकार अपने आसपास के परिवेश को एक विशि- ष्ट दृष्टि से — विज़न से देखता है और उसकी हरचन्द कोशिश यह रहती है कि सत्य के मुख पर जो ढक्कन पड़ा हुआ है , उसे हटानें में उसे सफलता प्राप्त हो । इस प्रयत्न में वह जितना ही सफल होता है , उतना ही बड़ा कलाकार वह कहलाता है । इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध अमरिकन विवेचक लियोनल ट्रिलिंग के शब्द उल्लेखनीय रहेंगे : " आल लिटरेचर टेंड्स टु बी कनसर्न विथ द क्वेश्चन आफ रियालिटी — आई मीन क्वाइट सिम्पली द ओल्ड ओपोजिशन बिटवीन रियालिटी एण्ड एक्सपिरीयन्स , बिटवीन वाट रियली इज़ एण्ड वाट मियरली इट सीम्स ." (द लिबरल इमेजिनेशन : पृ. 207) उपन्यासों में भी इसी जो "दिखता है " और " जो है " के द्वन्द्व को निरूपित किया जाता है ।

साहित्य में हमेशा "शब्द" और "अर्थ" उभय की संपृक्तता, साझीदारी पर जोर देता है । शब्द के बिना अर्थ की व्याप्ति नहीं और अर्थ के बिना शब्द का कोई महत्त्व नहीं । परन्तु फिर भी इन दोनों में कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है , उस पर आदि-अनादि का ल से चर्चा चल रही है और आगे भी चलती रहेगी । "शब्द" पर जोर देने वाले रूप की बात करते हैं , शिल्प और शैली की बात करते हैं , कला की बात करते हैं और " अर्थ " की बात करने वाले शब्द की इस व्याप्ति में मानवीय सरोकारों की पड़ताल करते हैं और हमारे प्रबन्ध के विषय का भी सीधा सम्बन्ध इन मानवीय सरोकारों से है ।

यह एक खुशी की बात है कि हिन्दी उपन्यास अपने प्रारंभिक दौर से ही इन द्वन्द्वों से लड़ता-जूझता आया है । हिन्दी का प्रथम उपन्यास, सतही तौर पर ही सही , पर इस युग की एक ज्वलंत समस्या से जुड़ा हुआ

है और वह समस्या है — नारी-शिक्षा की समस्या जो आर्य-समाजी प्रभाव का परिणाम है । प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासकारों में तत्कालीन समाज की समस्याओं का ~~प्रतिबिंब~~प्रतिबिंब मिलता है । उस समय के कथाकार दो खेमों में विभाजित थे — रूढ़िवादी और सुधारवादी । पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी, बालकृष्ण भट्ट, लाला श्रीनिवासदास, मन्नन द्विवेदी प्रभृति उपन्यासकार सुधारवादी थे ; तो दूसरी तरफ किशोरीलाल गोस्वामी, मेहता लज्जाराम ~~श~~ शर्मा, राधाचरण गोस्वामी आदि रूढ़िवादी थे । दोनों अपने-अपने ढंग से समाज की चिन्ता कर रहे थे । परन्तु इसमें गतिरोध देवकीनन्दन खत्री तथा बाबू गोपालराम गहमरी के कारण उपस्थित हुआ, जिसका प्रतिरोध करते हुए प्रेमचन्द आये । प्रेमचन्द का महत्व उसमें है कि उन्होंने न केवल एक नयी अभिरूचि को जगाया, बल्कि उस पुरानी लिजलिजी, मनोरंजन-प्रधान, वायवी कथा-सृष्टि में अरूचि भी पैदा कर दी । प्रेमचन्द का प्रेमचन्दत्व ही इसमें है कि उन्होंने हजारों-लाखों चन्द्रकान्ता और तिलस्मे-होशरूबा के पाठकों को "सेवासदन" का पाठक बनाया । मानव-चरित्र की पहचान प्रेमचन्द की अपनी देन है ।

प्रेमचन्द ने न केवल लिखा बल्कि अनेकों को लिखने के लिए प्रेरित किया । अपने पत्रों के द्वारा लोगों को कुरेदा । अपनी टीका-टिप्पणियों से लोगों को उत्प्रेरित किया । न वे जयशंकर प्रसाद पर ~~x~~ "गड़े मुर्दे उखाड़ने की" टिप्पणी करते, न हिन्दी उपन्यास को "कंकाल" जैसी यथार्थवादी रचना मिलती । प्रेमचन्द एक कलाकार ~~है~~ हैं, और कलाकार कभी बंधता नहीं, अपने ~~तक~~ तई, अपने नियमों से भी नहीं, अतः वह हमेशा "बीइंग" की प्रोसेस में रहता है । दूसरे शब्दों में कहें तो विकसनशील अवस्था में और इसलिए प्रेमचन्द में हमें एक निरंतर विकास मिलता है । प्रेमचन्द में एक यात्रा मिलती है । यह यात्रा स्थूलता से सूक्ष्मता, आदर्श से यथार्थ की यात्रा है । यहां इस बात का स्मरण रहे कि यथार्थ अपने आप में एक आदर्श है । वह कला का आदर्श है । कलाकार समाज की विरूपताओं, विद्रूपताओं और विसंगतियों को इसलिए नहीं चुनता कि उनसे यथार्थ का निरूपण होता है ; प्रत्युत इस-~~लिए×भूमल×है×~~

लिए चुनता है कि उसका मानव-मन मानवीय सरोकारों, मानवीय-निष्ठा, मानवीय-विवेक, न्याय आदि में विश्वास करता है। तात्पर्य कि मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा ही उसका काम्य होता है, अन्यथा उसकी कला उक्त सभी तत्वों के उपस्थिति में भी यथार्थवादी-परंपरा से दूर जा पड़ती है, जिसकी चर्चा "राग दरबारी" के सन्दर्भ में हो चुकी है। अतः कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द स्कूल के लेखकों ने मानवीय सरोकार के लक्ष्य को सामने रखकर अपने युग की तमाम-तमाम विसंगतियों पर प्रकाश ~~xxxx~~ डाला। "सेवासदन", "निर्मला", "गबन", "कर्मभूमि", "रंगभूमि", "प्रेमाश्रम", "गोदान" आदि सभी उपन्यासों में हमें तत्कालीन तथा कई सार्वजनीन और सार्वकालिक समस्याओं का निरूपण भी उक्त दृष्टिकोण के कारण मिलता है।

अपने "मार्क्सवादी कला-चिंतन और साहित्य-समीक्षा का विकास" नामक निबन्ध में डा० शिवकुमार मिश्र ~~xxx~~ अनिल भट्टी को उद्धृत करते हुए बताते हैं : "यथार्थवाद का मतलब यह है कि समाज में निहित कार्य कारण सम्बन्धों की जटिलताओं की तलाश की जाए, शासक वर्ग के मौजूदा विचारों का पर्दाफाश किया ~~xxx~~ जाय। समाज द्वारा झेली जा रही मुसीबतों के हल सुझाने वाले मजदूर वर्ग के नजरिये से रचना की जाय। समाज के विकास तत्व पर अधिक जोर दिया जाय।"

परन्तु आजादी के उपरान्त हमारे नेताओं का रवैया बड़ा ही भ्रामक, स्वार्थपरक और पाखण्ड को बढ़ावा देने वाला रहा। सत्ता के सूत्र पुनः उन सामन्तवादी-पूंजीवादी तत्वों के हाथों में चले गये। सामन्तवाद ने पूंजीवाद के साथ मिलकर अपने हथियारों को, शोषण के हथियारों को और भी अधिक नुकीला, असरदार और प्रभावी बनाया जिसे इस अध्ययन के तहत बलचनमा, गंगामैया, सती मैया का चौरा, मैला आंचल, कब तक पुकारूं, धरती धन न अपना, कभी न छोड़ें खेत, जिन्दगीनामा, अलग अलग वैतरणी, जल टूटता हुआ, सूखता हुआ तालाब, नाच्यौ बहुत गोपाल, एक टुकड़ा इतिहास, राग दरबारी प्रभृति अनेक ग्राम्यांचल के उपन्यासों में उद्घाटित करने का प्रयत्न हुआ है।

डा. रामदरश मिश्र ने अपने ग्रंथ "हिन्दी उपन्यास:एक अंतर्यात्रा" के अंत भाग में संकेत देते हुए लिखा है : " सामाजिक चेता के उपन्यासकारों में नया अध्याय जोड़ा आंचलिक उपन्यासों ने । इसका महत्व कई दृष्टियों से है । अब तक उपन्यासकारों की दृष्टि मुख्यत: शहरों को ही देख रही थी § लेखक का संकेत प्रेमचन्दोत्तर युग में लगभग 1950-52 तक के काल-खण्ड की ओर है § इन्होंने आजादी के बाद ग्रामजीवन में तेजी से आते हुए बदलावों की पहचान की ओर उनका व्यापक और गहरा चित्र अंकित किया । पहले प्रेमचन्द , वृन्दावनलाल वर्मा जैसे कुछ कथाकारों ने ग्रामजीवन को लिया था किन्तु आजादी के बाद के इन ग्रामधर्मी उपन्यासों ने सामान्य गांवों को न लेकर उन विशिष्ट गांवों को लिया जिन्हें उनके उपन्यासकारों ने जिया था और जिनका गहरा अनुभव उन्हें था ।इस-लिए इन उपन्यासों में अनुभव की गहराइयां उभरीं और चरित्रों , सन्दर्भों , इन्द्रियबोधों आदि के बहुत विशिष्ट और ताजा बिम्ब उभरे । इसके साथ ही इन्होंने नया औपन्यासिक शिल्प प्रदान किया । इस क्षेत्र में फणीश्वर नाथ रेणु के "मैला आंचल " का ऐतिहासिक महत्व तो है ही , उपलब्धिगत महत्व भी है । इस धारा में अनेक विशिष्ट उपन्यास लिखे गये जिनमें गांवों में बसे नये भारत की पहचान उभरती है । ये अत्यधिक प्रामाणिक उपन्यास हैं क्योंकि इनकी जमीन अपनी जमीन है , पश्चिम की नकल पर कल्पित जमीन नहीं है । .... इस धारा में §पश्चिम की नकल वाली धारा में § आजादी के बाद छोटे-छोटे बहुत से उपन्यास लिखे गये । उनका जोर कामग्रंथियों पर रहा और उनमें परिवेश की पकड़ ढीली पड़ती गयी । उन्होंने अपनी देशी वास्तविकता को पहचानने की अपेक्षा सार्वभौम और आधुनिक कहलाने के चक्कर में विदेशी माल ग्रहण करने पर अधिक बल दिया । ऐसे उपन्यास एक नया स्वाद लेने के लिए पढ़े जा सकते हैं किन्तु वे रुग्ण और प्रभावहीन हैं । ये हिन्दी साहित्य की परंपरा में हाशिये पर ही रहेंगे । केन्द्र में वे ही उपन्यास हैं जो अपने देश की ग्रामीण या शहरी जमीन से फूटे हैं और जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मनुष्य को संघर्ष की शक्ति और जिजीविषा प्रदान करते हैं । " प्रस्तुत

अध्ययन में भी उन उपन्यासों को ही केन्द्र में रखा गया है और जो अनुसंधित्सु के विषय के भी अनुकूल है ।

कोई भी साहित्यिक अध्ययन किसी विशेष दृष्टि को केन्द्र में रखकर किया जाता है, और यथार्थ के स्वरूप का आकलन भी अन्ततः दृष्टि-सापेक्ष रहता है, अतः इस अध्ययन की समूची प्रक्रिया में एक विशिष्ट जीवन-दृष्टि का सूक्ष्म-संचालन लक्षित होगा ही ; परन्तु मेरा यह नम्र अभिप्राय है कि कई बार कोई अध्ययन-विशेष भी हमें एक नयी दृष्टि प्रदान करता है । इस अध्ययन से मेरी दृष्टि का भी विकास हुआ है । जैसे-जैसे इस काम में अग्रसर होता गया, एक दृष्टि खुलती गयी । अतः प्रस्तुत अध्ययन यदि विचार-विमर्श, मानवीय विवेक, शुद्ध× शुद्ध वैचारिक सत्वशीलता, शोध और अनुसंधान की दिशा में इस राह के पथिकों का यदि यत्किंचित भी लाभ कर सका तो मैं अपने कार्य को सार्थक समझूंगा ।

===== xxxxx =====